सत्यमेव जयते

भारत का विधि आयोग

भारत में क्रिश्चियनों के बीच विवाह-विच्छेद के आधार : भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 की धारा 10 पर

नब्बेवीं रिपोर्ट

के०के० मैथ्यू

अं०स०एफ० 2(6)/82-वि०आ०

अध्यक्ष
विधि आयोग
भारत सरकार
शास्त्री भवन
नई दिल्ली-110001

7 मई, 1983

प्रिय मंत्री महोदय,

मैं इसके साथ "भारत में क्रिश्चियनों को लागू होने वाले विवाह-विच्छेद के आधार : भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 की धारा 10" के बारे में विधि आयोग की 90वीं रिपोर्ट भेज रहा हूं ।

2. विधि आयोग ने, भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 की धारा 10 का पुनरीक्षण करना भारत में क्रिश्चियनों को लागू भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम के अधीन लिंग के आधार पर विद्यमान भेदभावपूर्ण तत्व को दृष्टि में रखते हुए स्वप्रेरणा से अपने हाथ में लिया था ।

3. विवाह विधि के क्षेत्र में, विधि और समाज दोनों ही में व्यापक विकास हुआ है । अतः यह उचित है कि इन विकासों को ध्यान में रखा जाए और विधि समय के अनुरूप हो ।

4. आयोग, श्री पी०एम० बख्शी, आयोग के अल्पकालिक सदस्य के प्रति, इस रिपोर्ट को अंतिम रूप देने के लिए सम्मान व्यक्त करता है ।

सादर,

आपका,
हस्ता/-
(के०के० मैथ्यू)

69477(2)
28-9-86.

349.5402
M4;1

श्री जगन नाथ कौशल,
विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्री,
शास्त्री भवन, नई दिल्ली ।

विषय वस्तु

		पृष्ठ
अध्याय 1	प्रस्तावना	1
अध्याय 2	वर्तमान विधि तथा विचारार्थ मुद्दे	3
अध्याय 3	विभिन्न मुद्दों पर प्राप्त टिप्पणियां और व्यक्त विचार	6
अध्याय 4	अकृतता का प्रश्न	12
अध्याय 5	परस्पर सहमति	18
अध्याय 6	सिफारिश	19

परिशिष्ट

परिशिष्ट 1	भारतीय वैवाहिक विधि में अनुतोष के आधार	22
परिशिष्ट 2	धर्म विधि से संबंधित उद्धरण	23

अध्याय 1

प्रस्तावना

1.1. भारत के विधि आयोग ने इस प्रश्न पर विचार करना आरम्भ किया है कि क्या भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 की धारा 10 के अधीन भारतीय क्रिश्चियनों को लागू विवाह-विच्छेद के आधारों से संबंधित विधि का सुधार किया जाना चाहिए और यदि हों तो उसकी रूपरेखा क्या होनी चाहिए। समय-समय पर व्यक्तियों और सामाजिक संगठनों ने वर्तमान विधि की अपर्याप्तताओं पर बल दिया है। स्वयं भारत के विधि आयोग ने कुछ वर्ष पूर्व, भारत में क्रिश्चियनों के बीच विवाह और विवाह-विच्छेद की सम्पूर्ण विधि से संबंधित एक व्यापक रिपोर्ट में इस विषय पर विधि में सुधार की विस्तृत सिफारिशें की थीं[1] तथा इस विषय पर सरकार द्वारा तैयार किए गए एक विधेयक से उत्पन्न कुछ बातों के संबंध में एक अन्य रिपोर्ट[2] भी प्रस्तुत की थी। इस विषय से संबंधित विधि की त्रुटियों को दूर करने के लिए विधान पुरःस्थापित तो नहीं किया गया है किन्तु आयोग को यह प्रतीत होता है कि चाहे सरकार इस विषय पर अधिनियमितियों के पुनरीक्षण के रूप में कोई व्यापक विधान न बना सकती हो फिर भी कुछ मुद्दों पर, सामाजिक न्याय के हित में तुरन्त विचार करना आवश्यक है। इस विषय पर विचार करने की आवश्यकता।

1.2. विधि आयोग के अध्यक्ष को अभी हाल ही में सम्बोधित एक पत्र में[3] ऐसी क्रिश्चियन महिलाओं के कुछ वास्तविक मामलों का वर्णन किया गया है जिनके साथ उनके अपने पतियों ने घोर क्रूरता का व्यवहार किया था जिसके परिणामस्वरूप उन महिलाओं को बहुत यातनाएं सहनी पड़ीं और उनकी मानसिक स्थिति बिगड़ गई। उस पत्र में क्रिश्चियन पतियों द्वारा क्रूरता के (पतियों द्वारा अपनी पत्नियों से वेश्यावृत्ति कराने तक के), और ऐसे पतियों द्वारा जो अपने विगत दुराचरण के बावजूद यह आशा करते हैं कि उनकी पत्नियां उन्हें फिर से स्वीकार कर लें, लम्बें समय तक अभित्यजन के अनेक अन्य मामलों का भी उल्लेख किया गया है। ऐसे मामलों में विवाह-विच्छेद प्राप्त करने में कठिनाई के कारण, इन महिलाओं को अपने जीवन के उद्धार की तथा अपने लिए और अपने बालकों के लिए सुख प्राप्ति की कोई आशा नहीं है। श्रीमती राबर्ट्स के सुझाव का सारांश।

1.3. उपर्युक्त पत्र में इस बात पर भी बल दिया गया है कि विशेष विवाह अधिनियम और हिन्दू विवाह अधिनियम में विवाह-विच्छेद के एक आधार के रूप में "असमाधेय भंग" को जोड़कर उन दोनों अधिनियमों में संशोधन करने का हाल ही का प्रस्ताव आभागी भारतीय महिलाओं की मुक्ति की दिशा में पहला कदम है और इसका विस्तार क्रिश्चियनों पर भी किया जाना चाहिए। पत्र के अन्त भाग में, प्रत्येक समुदाय को लागू होने वाली समान विवाह-विच्छेद विधि की आवश्यकता पर बल दिया गया है, "जिससे कि विशेष रूप से, क्रिश्चियन महिलाएं दुःखद गठबंधन से पूर्णतया छुटकारा पा सकें और ऐसी अवस्था में एक नया जीवन आरम्भ कर सकें जब कि वे युवा और स्वस्थ चित्त हों"। विवाह का भंग होना।

यह उल्लेखनीय है कि विवाह विधियां (संशोधन) विधेयक संसद् के समक्ष लम्बित है और उसका आशय हिन्दू विवाह अधिनियम में विवाह-विच्छेद के एक आधार के रूप में असमाधेय विवाह-भंग को (पक्षकारों का एक विनिर्दिष्ट अवधि तक एक-दूसरे से अलग रहना जिसका साक्ष्य हो) जोड़ने के विषय में विधि आयोग द्वारा दी गई एक रिपोर्ट[4] को कियान्वित करना है। वह रिपोर्ट, भारत सरकार के विधि मंत्रालय द्वारा किए गए एक निर्देश के उत्तर में भेजी गई थी।

---

1. भारत का विधि आयोग, 15वीं रिपोर्ट (भारत में क्रिश्चियनों के बीच विवाह और विवाह-विच्छेद से संबंधित विधि)।

2. भारत का विधि आयोग, 22वीं रिपोर्ट (क्रिश्चियन विवाह आदि विधेयक)।

3. श्रीमती आउड्रे सोनिया राबर्ट्स, नई दिल्ली का विधि आयोग को सम्बोधित, तारीख 15 सितम्बर, 1982 का पत्र।

4. भारत का विधि आयोग, 71वीं रिपोर्ट (हिन्दू विवाह अधिनियम--विवाह-विच्छेद के आधार के रूप में, असमाधेय विवाह-भंग)।

स्त्रियों और पुरुषों की समानता।

1.4. उपर्युक्त पत्र में जो प्रश्न उठाए गए हैं उनके अलावा इस बात पर विचार करना भी उचित होगा कि क्या स्त्रियों और पुरुषों की समानता के आधार पर इस बात की तुरन्त आवश्यकता है कि भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम की धारा 10 का पुनरीक्षण किया जाए[1]।

रिपोर्ट का प्रविषय।

1.5. तदनुसार, इस रिपोर्ट में भारत में क्रिश्चियनों के बीच विवाह-विच्छेद के आधारों से संबंधित विधि के सुधार के प्रश्न पर विचार किया गया है।

कार्य-पत्र।

1.6. इस विषय पर लोगों के विचार जानने के लिए आयोग ने एक कार्य-पत्र तैयार किया था जो हितबद्ध व्यक्तियों और निकायों को परिचालित किया गया था। उस कार्य-पत्र का सारांश[2] और उस पर प्राप्त विचारों की चर्चा यथास्थान की जाएगी[3]।

---

1. आगामी अध्याय 2।
2. आगामी अध्याय 2।
3. आगामी अध्याय 3।

उक्त धारा के अधीन पुरुष और स्त्री के संबंध में स्थितियों की तुलना करने से यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाएगी। इस धारा के अधीन क्रिश्चियन पति को उपलब्ध विवाह-विच्छेद का आधार केवल "जारकर्म" बताया गया है। पति को इसके अतिरिक्त कोई अन्य तथ्य साबित करने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु पत्नी को उपलब्ध विवाह-विच्छेद के कारण इस धारा में सूक्ष्म रूप से बताए गए हैं। संक्षेप में कहा जाए तो इस धारा में पत्नी से यह अपेक्षित है कि वह पति के निम्नलिखित कार्यों में किसी एक या अन्य को साबित करे, अर्थात् (क) धर्म परिवर्तन के साथ अन्य विवाह, या (ख) बलात्संग, गुदा-मैथुन या पशुगमन, या (ग) जारकर्म, जिसके साथ इस धारा में विनिर्दिष्ट कोई विशिष्ट गंभीरकारक क्वालिटी (गुणवता) का तत्व या परिस्थिति होनी आवश्यक है। संक्षेप में, इस धारा में अपेक्षित है यह आवश्यक है कि पति द्वारा किया गया जारकर्म (i) अगम्यमनात्मक, या (ii) द्विविवाह सहित, या (iii) "अन्य स्त्री के साथ विवाह" के साथ, या (iv) ऐसी क्रूरता सहित जो जारकर्म के बिना ही किसी स्त्री को सहवास विच्छेद की हकदार बना देती, या (v) उचित कारण बिना कम से कम दो वर्ष के लिए अभित्यजन सहित हुआ हो।

इस प्रकार पुरुष की तुलना में स्त्री को अत्यधिक प्रतिकूल स्थिति में रखा गया है क्योंकि उससे यह अपेक्षित है कि वह जारकर्म के अतिरिक्त ऊपर गिनाए गए किसी एक या अन्य अतिरिक्त तथ्यों को भी साबित करे। जहां तक कि यह बात है भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 की धारा 10 के वर्तमान उपबंध ने विवाह-विच्छेद के आधार के रूप में जारकर्म के संबंध में ये कठोर परिसीमाएं अधिरोपित की हैं, यह संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण करने वाली प्रतीत होती है। तत्प्रतिकूल न्यायिक निर्णयों[1] के होते हुए भी, यही दृष्टिकोण उचित प्रतीत होता है। संविधान के अनुच्छेद 14 के अधीन, राज्य भारत के राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा। धारा 10 इस आज्ञा का अतिक्रमण करती है।

इसके अतिरिक्त, ऐसा प्रतीत होता है कि धारा 10 संविधान के अनुच्छेद 15(1) का भी अतिक्रमण करती है। उस अनुच्छेद के अधीन "राज्य, किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा"। संविधान **स्त्रियों के लिए किन्तु उनके विरुद्ध नहीं,** विशेष उपबंध किए जाने के पक्ष में है।[2] अतः उस विभेद को जो भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 की धारा में बिलकुल स्पष्ट है, दूर करने और पुरुषों तथा स्त्रियों के साथ समता का व्यवहार करने की व्यवस्था करने की तुरन्त आवश्यकता है। आयोग के अनुसार, विचार किए जाने के लिए यह सर्वप्रथम और सबसे अधिक आवश्यक प्रश्न है तथा इसे कार्य-पत्र में प्रथम अनुकल्प के रूप में प्रस्तुत किया गया।

क्रिश्चियनों के लिए विवाह-विच्छेद के आधारों को व्यापक बनाना (दूसरा अनुकल्प)।

2. 4. विवाह-विच्छेद के संबंध में विचारणीय दूसरा प्रश्न इससे कुछ व्यापक है अर्थात्, क्या भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 का इस प्रकार संशोधन किया जाना चाहिए कि क्रिश्चियनों के बीच उन आधारों पर, जिनका वर्तमान धारा में उल्लेख नहीं है, विवाह-विच्छेद की अनुज्ञा हो, जैसे कि क्रूरता, अभित्यजन, पागलपन और अन्य रोग तथा अन्य विभिन्न प्रकीर्ण आधार जो भारत में प्रवृत्त अन्य अधिनियमितियों के अधीन उपलब्ध है।[3] कार्य-पत्र में प्रस्तुत किया गया यह दूसरा अनुकल्प था।

आयोग का विचार था कि दूसरे अनुकल्प को इससे नरम स्वरूप का बनाया जा सकता है। (क्रिश्चियनों के बीच) पति या पत्नी को उपलब्ध होने वाले विवाह-विच्छेद के आधार के रूप में निम्नलिखित के जोड़े जाने की बात सोची जा सकती है, अर्थात् :—

(i) जारकर्म,

(ii) उचित कारण के बिना दो वर्ष की अवधि के लिए अभित्यजन,[4] और

(iii) क्रूरता।

---

1. द्वारकाबाई बनाम नरहन, ए० आई० आर० 1953 मद्रास 792।
2. यूसुफ बनाम राज्य, ए० आई० आर० 1954 एस० सी० 321 (1954) एस० सी० आर० 930।
3. भारतीय विवाह संबंधी विधान के अधीन विवाह-विच्छेद के विभिन्न आधारों का संक्षिप्त वर्णन परिशिष्ट में किया गया है।
4. यदि "अभित्यजन" की व्यापक परिभाषा की जाती है तो उचित कारण का अभाव उस परिभाषा का अंग होगा।

2.5. कार्य-पत्र में प्रस्तुत तीसरे अनुकल्प में इससे भी अधिक व्यापक प्रश्न उठाया गया था, अर्थात् क्या भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 में विवाह के "असमाधेय रूप में भंग हो जाने" को (जिसका साक्ष्य यह हो कि पक्षकार एक विनिर्दिष्ट अवधि तक एक दूसरे से अलग रहे हैं) विवाह-विच्छेद का एक आधार जोड़कर उसका और अधिक मूलभूत संशोधन किया जाना चाहिए। यह उस विधेयक के आधार पर होगा जो इस समय संसद् में लंबित है और जिसके अनुसार हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 और विशेष विवाह-अधिनियम, 1954 में इस विशिष्ट आधार को जोड़ने के उद्देश्य से उन अधिनियमों का संशोधन करने का प्रस्ताव है। कार्य-पत्र में प्रस्तुत किया गया यह तीसरा अनुकल्प था। असमाधेय विवाह-भंग (तीसरा अनुकल्प)।

2.6. कार्य-पत्र में इस बात का उल्लेख भी किया गया था कि सिद्धांत रूप में, क्रिश्चियनों को लागू होने वाले विवाह संबंधी विधान में और भी अधिक विस्तृत संशोधन करने का औचित्य हो सकता है। यदि भारत में क्रिश्चियनों के बीच विवाह और विवाह-विच्छेद से संबंधित सम्पूर्ण विधि के पुनरीक्षण का कार्य आरंभ किया जाए तो भारतीय क्रिश्चियन विवाह अधिनियम, 1872 और भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम, 1869 के व्यापक पुनरीक्षण तथा मुख्य नियमों और प्रक्रिया, दोनों में, आवश्यक सुधार करने की बात भी सोची जा सकती है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है[1], भारत के विधि आयोग ने सरकार को ऐसी एक रिपोर्ट भेजी थी जो भारत में क्रिश्चियनों के बीच विवाह और विवाह-विच्छेद से संबंधित विधि पर विधि आयोग की 15वीं रिपोर्ट (1960) थी। इसके बाद विधि आयोग की 22वीं रिपोर्ट थी जिसमें आयोग ने कुछ ऐसे अतिरिक्त मुद्दों पर, जो भारत सरकार ने आयोग को निर्देशित किए थे, अपने विचार व्यक्त किए थे। ये मुद्दे उस विधेयक से संबंधित थे जो सरकार ने 15वीं रिपोर्ट को क्रियान्वित करने के उद्देश्य से तैयार किया था। इस विषय पर आयोग की रिपोर्टों को अभी क्रियान्वित नहीं किया गया है। इस विषय पर विधि सुधार के प्रस्तावों के इस विगत इतिहास का उल्लेख भी उक्त कार्य-पत्र में किया गया था। व्यापक उपबंध--क्रिश्चियन विवाह और विवाह-विच्छेद पर विधि आयोग की रिपोर्ट।

2.7. उपर्युक्त सामग्री की (जो कार्य-पत्र में सम्मिलित की गई थी) पृष्ठभूमि में आयोग ने निम्नलिखित अनुकल्पी प्रस्तावों पर राय आमंत्रित की थी : कार्य-पत्र में उल्लिखित तीन अनुकल्प।

(i) क्या भारत में क्रिश्चियनों के बीच विवाह-विच्छेद संबंधी विधि (भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 की धारा 10) का संशोधन पत्नी के विरुद्ध विभेद के उस तत्व को जो इस समय विधि में स्पष्ट है, हटाने के लिए किया जाना चाहिए ?

(ii) क्या भारत में क्रिश्चियनों के बीच विवाह-विच्छेद संबंधी विधि का संशोधन, पति और पत्नी की उपलब्ध आधारों को इस प्रकार व्यापक बना कर किया जाना चाहिए कि उनके अन्तर्गत वे आधार भी आ जाएं जो इस समय भारत में प्रवृत्त विभिन्न वैवाहिक कानूनों के अधीन उपलब्ध हैं ?

(iii) क्या असमाधेय विवाह-भंग, जिसका साक्ष्य यह हो कि पक्षकार एक विनिर्दिष्ट अवधि तक एक-दूसरे से अलग रहे हैं, का आधार (जिसे हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 में जोड़ने का प्रस्ताव है) क्रिश्चियनों को भी उपलब्ध कराया जाना चाहिए ?

---

1. पूर्वगामी पैरा 1.1।

अध्याय 3

विभिन्न मुद्दों पर प्राप्त टिप्पणियां और व्यक्त विचार

प्रस्तावना।

3.1. हम ऊपर उन महत्वपूर्ण प्रतिपादनाओं का उल्लेख कर चुके हैं जिन पर कार्य-पत्र में विचार आमंत्रित किए गए थे। अब हम कार्य-पत्र[1] पर प्राप्त विचारों का संक्षेप में वर्णन करेंगे। प्रथम अनुकल्प में यह प्रश्न उठाया गया था कि क्या भारत के क्रिश्चियनों के बीच विवाह-विच्छेद संबंधी विधि (भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 की धारा 10) का संशोधन पुरुषों और स्त्रियों के बीच विभेद के उस तत्व को जो इस समय विधि में स्पष्ट है, हटाने के लिए किया जाना चाहिए। यह कार्य-पत्र में निश्चित किए गए अनुकल्पों में से सब से अधिक सीमित अनुकल्प था।

कार्य-पत्र में दिए गए दूसरे अनुकल्प में यह प्रश्न उठाया गया था कि क्या क्रिश्चियनों के बीच पति और पत्नी को विवाह-विच्छेद के आधारों को इस प्रकार व्यापक बनाया जाना चाहिए कि उनके अन्तर्गत वे आधार भी आ जाएं जो इस समय भारत में प्रवृत्ति विभिन्न वैवाहिक कानूनों के अधीन उपलब्ध हैं। सबसे अधिक व्यापक अनुकल्प तीसरे प्रश्न में रखा गया था जिसमें इस प्रश्न पर विचार आमंत्रित किए गए थे कि क्या असमाधेय विवाह-भंग, जिसका साक्ष्य यह हो कि पक्षकार एक विनिर्दिष्ट अवधि तक एक-दूसरे से अलग रहे हैं, का आधार (जिसे हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 और विशेष विवाह अधिनियम, 1954 में जोड़ने का प्रस्ताव है) क्रिश्चियनों को भी उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

प्रथम अनुकल्प के पक्ष में टिप्पणियां।

3.2. कार्य-पत्र के उत्तर में प्राप्त अनेक टिप्पणियां प्रथम अनुकल्प के पक्ष में हैं। समाचार-पत्रों और पत्र-पत्रिकाओं में, जिन्हें देखने का हमें अवसर मिला, प्रकाशित अनेक लेखों और पत्रों में भी इसका जोरदार समर्थन किया गया है। उदाहरणार्थ, भारत की कैथोलिक विशप्स कान्फ्रेंस ने कार्य-पत्र पर अपनी टिप्पणी में, उन तर्कों के औचित्य को विवक्षित रूप से स्वीकार किया है जो कार्य-पत्र में उल्लिखित प्रथम अनुकल्प के आधार-स्वरूप हैं और वह कान्फ्रेंस इस बात से सहमत है कि पति और पत्नी के बीच वह विभेद जो भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 की धारा 10 में मौजूद है, गलत है और उसे ठीक करने की आवश्यकता है। उस टिप्पणी में कुछ अतिरिक्त बातें भी कही गई हैं जो संक्षेप में इस प्रकार हैं। सर्वप्रथम, यह कहा गया है कि भारत में, उसके एक धर्मनिरपेक्ष राज्य होने के नाते, भिन्न-भिन्न धार्मिक समुदायों में होने वाले विवाहों के संबंध में विशेष कानून नहीं होने चाहिए। राष्ट्रीय कानून सामान्य मुद्दों तक सीमित हों जब कि विनिर्दिष्ट धर्मों के विशिष्ट क्षेत्रों के लिए प्रत्येक धर्म के नियमों में उपबंध होने चाहिए।

दूसरी बात यह कि उक्त कान्फ्रेंस की टिप्पणी में यह सुझाव दिया गया है कि चूंकि विवाह के स्वरूप के बारे में धर्म-वैधानिक उपबंधों को देश की सिविल विधि द्वारा स्वीकार किया गया है इसलिए सक्षम चर्च प्राधिकारी द्वारा मंजूर की गई विवाह अकृतता की घोषणा को भी सिविल विधि में मान्यता प्राप्त होनी चाहिए। तीसरी बात यह कही गई है कि चर्च की आस्था, जारकर्म आदि के आधार पर सहवास विच्छेद का उपबन्ध करता है और ये उपबंध भी जिस रूप में वे धर्म-विधि में है, राज्य द्वारा मान्य हो सकते हैं। अन्त में, टिप्पणी में विवाह-विच्छेद और सहवास-विच्छेद को एक दूसरे से पृथक् रखे जाने की उत्सुकता व्यक्त की गई है। उस टिप्पणी के अन्तिम पैरा में विधि आयोग के कार्य-पत्र में उठाए गए प्रश्नों के संबंध में निम्नलिखित ठोस सुझाव दिया गया है:—

> "ऊपर जो कुछ कहा गया है उसको दृष्टि में रखते हुए, कार्य-पत्र के अन्तिम भाग में उठाए गए तीनों प्रश्नों के उत्तर "हां" है परन्तु शर्त यह है कि बात का संबंध सहवास-विच्छेद से हो न कि विवाह बंधन के विघटन और परिणामस्वरूप पुनः विवाह करने की स्वतंत्रता से।"

---

1. 29 नवम्बर, 1982 को परिचालित कार्य-पत्र, पैरा 15।
इसके अतिरिक्त आगामी पैरा 3.6 भी देखिए ?

3.3. कार्य-पत्र पर प्राप्त कुछ टिप्पणियां उसमें दिए गए दूसरे अनुकल्प के पक्ष में हैं। कार्य-पत्र में दिए गए प्रथम अनुकल्प का निश्चित रूप से अनुमोदन करने वाला एक उच्च न्यायालय इस बात से सहमत है कि पुरुषों और स्त्रियों के बीच विभेद को दूर किया जाना चाहिए। वह उच्च न्यायालय, कार्य-पत्र में दिए गए दूसरे अनुकल्प को इस शर्त पर स्वीकार करने के लिए भी तैयार है कि भारत में प्रवृत्त सभी वैवाहिक कानूनों में उपलब्ध विवाह-विच्छेद के सभी आधारों को क्रिश्चियनों से संबंधित कानून में सम्मिलित करने की आवश्यकता नहीं है। "संशोधित हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के अधीन उपलब्ध आधारों को, जिसके अन्तर्गत उसमें यथा उपबंधित परस्पर सहमति भी है, सम्मिलित करना ही पर्याप्त होगा"। यह टिप्पणी तीसरे अनुकल्प (विवाह-विच्छेद के आधार के रूप में असमाधेय विवाह-भंग) के पक्ष में नहीं है। उसके बारे में इसमें कहा गया है कि "यह संविवाद का विषय है और भारत में अभी तक इसे कसौटी पर नहीं कसा गया है।" दूसरे अनुकल्प के पक्ष में टिप्पणियां।

3.4. कार्य-पत्र पर प्राप्त कुछ टिप्पणियां विधि के व्यापक पुनरीक्षण—प्रश्नावली में उल्लिखित तीसरे अनुकल्प—के पक्ष में हैं। उदाहरणार्थ, एक उच्च न्यायालय का कहना है कि "ऐसे मामलों में जिसमें पति और पत्नी दोनों पृथक् होने के लिए सहमत हैं और जिसमें असमाधेय विवाह-भंग हुआ है, क्रिश्चियन दम्पत्तियों को न्यायालयों का सहारा पाने में सहायता देने के लिए" भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 में व्यापक संशोधन आवश्यक है, इस उच्च न्यायालय की टिप्पणी में यह भी कहा गया है कि भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 "अपने वर्तमान रूप में पुराना पड़ गया है"। वह उच्च न्यायालय अधिनियम की धारा 7 के (जिसमें भारतीय न्यायालयों से यह अपेक्षित है कि वे उन मामलों में जिनके लिए विनिर्दिष्ट रूप से उपबंध नहीं किया गया है, इंग्लैण्ड की परिपाटी का अनुसरण करें) निरसन और विवाह विघटन के मामलों का विचारण करने के लिए उस अधिनियम के अधीन उच्च न्यायालयों की आरंभिक अधिकारिता को समाप्त करने की बात भी कहता है। वह उच्च न्यायालय यह सुझाव भी देता है कि विवाह-विच्छेद की डिक्री की उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा पुष्टि की आवश्यकता समाप्त कर दी जानी चाहिए। वह उच्च न्यायालय यह भी कहता है कि ऐसी डिक्री को आत्यंतिक बनाने के लिए छह मास की अवधि की (जो वर्तमान विधि के अधीन आवश्यक है) कोई आवश्यकता नहीं है। टिप्पणी के अंत में निम्नलिखित ठोस सुझाव दिया गया है :— तीसरे और व्यापकतर अनुकल्प के पक्ष में टिप्पणियां।

> "अधिनियम के उपबंधों को विशेष विवाह अधिनियम या हिन्दू विवाह अधिनियम के उपबंधों के अनुरूप बनाया जा सकता है।"

3.5. विधि में संशोधन की आवश्यकता से सिद्धान्ततः सहमत होते हुए भारत सरकार के विधायी विभाग[1] ने कार्य-पत्र पर अपनी टिप्पणी में इस विषय पर विधि में सुधार के विगत प्रयासों के इतिहास के प्रति (इसका उल्लेख विधि आयोग के कार्य-पत्र में भी किया गया था) निर्देश किया है। विधायी विभाग ने विधि आयोग की 15वीं और 22वीं रिपोर्टों को कार्यान्वित करने के लिए विधेयक भी संसद् के दोनों सदनों की संयुक्त समिति द्वारा उस पर रिपोर्ट दिये जाने के बाद, आयोग के पास भेजा है। उस विभाग ने इस विषय पर उस तारांकित प्रश्न का भी उल्लेख किया है जिसका उत्तर सरकार ने लोकसभा में 16 दिसम्बर, 1980 को दिया था। टिप्पणी से प्रतीत होता है कि सरकार इस बात के लिए उत्सुक है कि इस विषय में, विशेष प्रयास करके, क्रिश्चियन समुदाय के विचार मालूम किए जाएं। सरकार का बुनियादी रवैया इस टिप्पणी के अंतिम पैरा में अन्तर्विष्ट प्रतीत होता है, जिसे हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं :— भारत सरकार की टिप्पणी।

> "आयोग ने अपने कार्य-पत्र में जो तीन प्रश्न उठाए हैं उनके उत्तर, प्रथम सिद्धान्तों के आधार पर स्वीकारात्मक ही होंगे किन्तु विशेष रूप से सरकार के विगत अनुभव की दृष्टि से यह आवश्यक प्रतीत होता है कि इस विषय में क्रिश्चियन समुदाय के विचारों का पता लगाने के लिये विशेष प्रयास किये जाने चाहिएं।"

3.6 कार्य-पत्र पर प्राप्त टिप्पणियों के अलावा हमें कुछ समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों और पत्रों को देखने का अवसर भी मिला है जिनमें इस विषय पर विचार व्यक्त किये गए हैं। अधिकतर लेखों और पत्रों को पढ़ने से विद्यमान विधि के प्रति गहरा असंतोष प्रकट होता है यद्यपि कुछ लेख आदि ऐसे भी हैं जिनमें यथापूर्व स्थिति बनाए रखने के पक्ष में विचार व्यक्त किए गए हैं। विभिन्न लेखों और समाचार-पत्रों में लेख और पत्र।

---

1. विधायी विभाग एफ 11(2)/82 एल० 11, तारीख 12 जनवरी, 1983।

पत्रों में सुझाए गए उपाय या सुधार भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं और उनमें से अनेक में ऐसी बातें उठाई गई हैं जो हमारे कार्य-पत्र में नहीं उठाई गई थीं, अर्थात् विधि में कुछ ऐसे उपबंधों की आवश्यकता जो चर्च के समक्ष प्राधिकारी द्वारा किये गए अकृतता के निर्णय को सिविल न्यायालयों द्वारा मान्यता दिए जाने को सुकर बनाएं ।

समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में इस विषय पर प्रकाशित लेखों में अनेक बातें कही गई हैं । कुल मिला कर, बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों के प्रकाश में विधि के पुनरीक्षण की आवश्यकता पर बल दिया गया है । इसके अतिरिक्त, यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि चर्च द्वारा दिए गए अकृतता के निर्णय को सिविल न्यायालयों द्वारा मान्यता दिये जाने के लिए उपबंध के अभाव से एक गंभीर विषमता उत्पन्न होती है क्योंकि (वर्तमान स्थिति के अधीन) कोई व्यक्ति देश की विधि के प्रयोजनों के लिए विवाहित बना रहता है जब कि चर्च ने उसके विवाह को पहले ही शून्य घोषित कर दिया गया है । यह भी बताया गया है कि गोवा में यथा-प्रवृत्त पुर्तगाली विधि में चर्च प्राधिकारियों द्वारा दिए गए अकृतता के ऐसे निर्णयों को मान्यता प्राप्त है । (इस संबंध में, पुर्तगाली विधि द्वारा 1911 में गोवा की बाबत किए गए एक उपबंध के प्रति निर्देश किया गया है) ।

लेखों में व्यक्त विचार का सारांश ।

3.7. समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों और पत्रों में व्यक्त किए गए प्रत्येक विचार के प्रति विस्तारपूर्वक निर्देश करना अनावश्यक है । तथापि, महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख करना उपयोगी होगा । मोटे तौर पर, व्यक्त किए गए प्रमुख विचार निम्नलिखित हैं—

जी० आर० राजगोपाल "पर्सनल लॉ इन्टीग्रेशन" (15 सितम्बर, 1982) इंडियन एक्सप्रेस	उच्चतम न्यायालय के निर्णय के प्रकाश में, क्रिश्चियनों से संबंधित विधि में परिवर्तनों की आवश्यकता का उल्लेख किया गया (विवाह-विच्छेद के आधार के रूप में परस्पर सम्मति)[1] ।
केनेथ ए० फ़िलिप्स "क्रिश्चियन विक्टिम्स आफ़ आर्केइक लॉ" (21 सितम्बर, 1982) टाइम्स ऑफ़ इंडिया	भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम के पुरातन स्वरूप का उल्लेख किया गया । सुधार की आवश्यकता बताते हुए कुछ निर्णयों के प्रति निर्देश किया गया । स्त्रियों के विरुद्ध विभेद को हटाने की आवश्यकता का विशेष रूप से उल्लेख किया गया । विवाह-विच्छेद के आधारों का विस्तार करने और "पद्धति के पूर्णरूप से पुनर्गठन" की वांछनीयता पर बल दिया गया ।

गोवा की विधि के प्रति भी निर्देश किया गया है जिसकी बाबत यह कहा गया है कि वह सारतः, चर्च द्वारा अकृतता के निर्णय को मान्यता देता है[2]। मद्रास के एक विनिर्णय[3] का भी उल्लेख किया गया जिसमें भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम में, दूसरे पक्षकार (पति) की सात वर्ष तक अनुपस्थिति को विवाह के विघटन का आधार न मानने के परिणामस्वरूप विद्यमान विषमता की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है । लेख के अंत में पोप के एक सार्वभौम पत्र से निम्नलिखित गद्यांश उद्धृत किया गया है :—

> "स्त्रियां अपनी मानव गरिमा के प्रति बराबर अधिक सजग होती जा रही हैं इसलिए वे यह सहन नहीं करेंगी कि उन्हें मात्र भौतिक साधनों के रूप में समझा जाए, बल्कि वे पारिवारिक और सार्वजनिक, जीवन के दोनों ही क्षेत्रों में मानवोचित अधिकारों की मांग करेंगी ।"

---

1. देखिए आगामी अध्याय 5 ।

2. इस विषय पर, आगामी पैरा 4.8 भी देखिए ।

3. जार्ज कार्लीलियस बनाम एलिजाबेथ दीप्ती समादनम, ए० आई० आर० 1070 मद्रास 240 (न्यायाधीश पलनीस्वामी) जिसके प्रति निर्देश रोनाल्ड आर० इमानी बनाम भारत संघ ए० आई० आर० 1982, एस० सी० 1251 (सितम्बर) में किया गया ।

जार्ज मेंजीस,
(1 अक्तूबर, 1982 के) टाइम्स ऑफ़ इंडिया में प्रकाशित पत्र ।

एक निरंतर अवधि तक अभित्यजन के आधार पर विवाह विच्छेद मंजूर किए जाने की आवश्यकता पर बल दिया गया । वर्तमान विधि में पुरुष और स्त्री के बीच किए गए विभेद का भी उल्लेख किया गया । शेष भारत के क्रिश्चियनों की तुलना में गोवा, दमण और दीव के क्रिश्चियनों की विधि अधिक प्रगतिशील है इसलिए विधि के क्षेत्र में भौगोलिक एकरूपता के अभाव पर भी बल दिया गया ।

फ़ादर क्रूज डिसूज़ा,
सावन्तवाडी, (11 अक्तूबर, 1982) के इंडियन एक्सप्रेस में प्रकाशित पत्र ।

यह आवश्यक है कि राज्य, चर्च द्वारा मंजूर अकृतताओं और विघटनों को मान्यता दे जैसा कि 1911 में अधिनियमित पुर्तगाली विधि के अधीन गोवा में है ।

डोरिस डिसूज़ा,
बम्बई, (16 अक्तूबर, 1982 के) टाइम्स ऑफ़ इंडिया में प्रकाशित पत्र ।

भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम विभेदकारी और पुरातन है । चर्च से अकृतता प्राप्त कर लेने पर भी "स्त्री" को विवाह विच्छेद प्राप्त करने के लिए, जो हर हालत में बहुत समय बाद मिलता है, लम्बे समय तक यातना, न्यायालय की कष्टकर, अन्तहीन और अव्यवहारिक प्रक्रिया से होकर गुजरना होता है । मैं चाहता हूं कि हमारे सांसद भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम, 1869 की शिकार निर्दोष और तंग हुई स्त्रियों को अत्यावश्यक राहत देने के लिए तुरंत उपयुक्त कानून पास करें ।

विन्सटन एफ़ (सलदन्हा, बम्बई,
(23 अक्तूबर, 1982 के) टाइम्स ऑफ़ इंडिया में प्रकाशित पत्र ।

ऐसे दम्पत्ति की जिसका विवाह चर्च द्वारा अकृत घोषित कर दिया गया है, सामाजिक प्रास्थिति अनिश्चित होती है । "इसका उपाय विधि को संहिताबद्ध करना और उसे एकरूप बनाना है । हिंदु विवाह अधिनियम, 1955 और विशेष विवाह अधिनियम, 1954 जैसी विधियां इसका आधार होनी चाहिएं । असमाधेय विवाह भंग और चर्च द्वारा अकृतता भी न्यायालयों द्वारा विवाह विच्छेद[1] अकृतता के लिए अतिरिक्त आधार होने चाहिएं । यह दुर्भाग्य की बात है कि सरकार ने क्रिश्चियन विवाह और वैवाहिक वाद विधेयक को जो 1962 में संसद में पुनःस्थापित किया गया था किंतु व्यपगत हो गया, संसद् में फ़िर से पुरःस्थापित नहीं किया गया है" ।

अभी अशांति, बम्बई, (4 अक्तूबर, 1982 के) द एक्जामिनर में प्रकाशित पत्र ।

लेखिका मानसिक क्रूरता से पीड़ित पति या पत्नियों को राहत देने की आवश्यकता की ओर ध्यान आकर्षित करती है । वह शराबी व्यक्ति की पत्नियों के प्रति जिनका जीवन छिन्न-भिन्न हो चुका है और जो मुश्किल से जीवन निर्वाह कर पाती हैं, और "कामोन्मादिनी और मतिभ्रंश" पत्नियों के पतियों के प्रति निर्देश करती हैं । उन्होंने इंस्टीट्यूट ऑफ़ सोशल साइसेन्ज़ (बम्बई) में अपनी परियोजना के अनुभव के प्रति

भी निर्देश किया है जिसमें वे अनेक ऐसी कैथोलिक स्त्रियों से मिली थीं जो अवमानवीय रूप से जी रही थीं। "केवल विवाह बंधन के विघटित न हो पाने के कारण ·····" "यदि कैथोलिक पादरी याजक वर्ग से निकलने की इच्छा करके उसे प्राप्त कर सकते हैं तो कैथोलिक समुदाय का जनसाधारण यदि विवाह विच्छेद नहीं तो अकृतता की मांग करके उसे विशेष रूप से तब क्यों नहीं प्राप्त कर सकता है जब कि यह साबित किया जा सकता है कि विवाह असमाधेय रूप से भंग हो गया है?"

टेरेसा अलबुकर्क, बम्बई,
(11 दिसम्बर, 1982 के)
द एक्जामिनर में प्रकाशित पत्र।

(i) चर्च द्वारा विवाह के अकृत किए जाने की विधि द्वारा मान्यता दी जानी चाहिए।

(ii) वर्तमान विधि स्त्रियों के लिए एक अपमान है क्योंकि उसमें स्त्रियों और पुरुषों में विभेद किया गया है।

एफ़० एम० पिन्टो, बम्बई,
(18 दिसम्बर, 1982 के)
द एक्जामिनर में प्रकाशित पत्र।

क्रिश्चियनों के लिए विवाह विच्छेद के विषय पर नए सिरे से सोचने का समय आ गया है।

विन्सन एफ़०, सलदाना,
(24 दिसम्बर, 1982 के)
द हेराल्ड में और (जनवरी, 1983, में)
होम लाइफ़ में तथा (जनवरी, 1983 में)
द एक्जामिनर में प्रकाशित पत्र।

पत्र में सारे देश में कैथोलिक पति-पत्नियों के अनेक ऐसे दुखद मामलों का उल्लेख किया गया है जिनके विवाह श्री केनेथ फ़िलिप्स के लेख में विनिर्दिष्ट एक या अधिक आधारों पर शून्य है और जो अपने विवाह को शीघ्र अकृत घोषित करवाने में असमर्थ हैं। ऐसी स्थिति केवल इसलिए है कि नैतिक धर्म विज्ञान और धार्मिक विधि के क्षेत्र में ऐसे विद्वान पादरियों की संख्या अपर्याप्त है जो इन मामलों में निर्णय देने के लिए चर्च संबंधी अधिकरण गठित कर सकें और अनुतोष प्रदान कर सकें।

पीटर फ़्रियूराइड, कलकत्ता,
(24 दिसम्बर, 1982 के)
द हैराल्ड में प्रकाशित पत्र।

श्री केनेथ फ़िलिप्स के लेख पर टिप्पणी करते हुए श्री फ़्रियूराइड कहते हैं कि भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम के अकृतता संबंधी उपबंध पर्याप्त हैं। उस टिप्पणी के अनुसार सिविल न्यायालयों की प्रक्रिया, चर्च अधिकरणों की प्रक्रिया से श्रेष्ठ है। विवाह विच्छेद अधिनियम में दुरभिसंधि के विरुद्ध रक्षोपाय है जब कि चर्च अधिकरणों में (कार्यवाही) गोपनीय होती है।

"ऐसा कोई कारण नहीं है कि चर्च अधिकरणों से आया हुआ कोई वास्तविक मामला उसी साक्ष्य के आधार पर जो पहले साबित हो चुका है सिविल न्यायालयों द्वारा क्यों न स्वीकार किया जाना चाहिए। किसी गुप्त अधिकरण के विनिश्चय को आंखमूंद कर स्वीकार कर लेना विधि के समक्ष समानता की धारणा के अनुकूल नहीं है। भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम पारम्परिक रोमन कैथोलिक नीतिशास्त्र के उतना निकट बना हुआ है जितना कि ऐसे समाज में संभव है जिसमें व्यभिचार व्याप्त है। यह देखकर दुख होता है कि उस अधिनियम पर एक रोमन कैथोलिक पत्रिका में प्रगति के नाम पर हमला किया जा रहा है।"

(31 दिसम्बर, 1982 के)
द एक्जामिनर में समाचार।

कोचीन में हुए महिला वकीलों के तीन दिवसीय द्वै-वार्षिक राष्ट्रीय सम्मेलन में 30 दिसम्बर, 1982 को एक संकल्प पारित किया गया जिसमें मांग की गई कि विवाह विच्छेद के उपबंध का विस्तार क्रिश्चियन विवाह अधिनियम पर भी किया जाए।

एफ़० एम० पिन्टो, बम्बई, (जनवरी, 1983 के) होमलाइफ़ में प्रकाशित पत्र ।

(i) चर्च द्वारा विवाह के अकृत किए जाने को मान्यता दी जानी चाहिए ।

(ii) यह दुर्भाग्य की बात है कि क्रिश्चियन विवाह और वैवाहिक वाद विधेयक, 1962 व्यर्थ साबित हुआ ।

(6 जनवरी, 1983 के) टाइम्स ऑफ़ इंडिया में "करेंट टापिक्स" के अंतर्गत टिप्पणी ।

(i) भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम 1869 के अधीन विवाह विच्छेद बहुत सीमित परिस्थितियों में उपलब्ध है जिससे यह उपबंध वस्तुतः निष्फल हो जाता है। पत्नी नपुंसकता, पागलपन या क्रूरता के आधार पर विवाह विच्छेद के लिए वाद नहीं चला सकती है ।

(ii) विधि का पुरातन और क्रूर स्वरूप इस तथ्य से स्पष्ट है कि वह चर्च द्वारा पारित अकृतता आदेश को स्वीकार नहीं करती है गोवा में प्रचलित पुर्तगाली विधि कहीं अधिक प्रगतिशील है और वह चर्च द्वारा अकृत घोषित विवाहों को विघटित कर देती है ।

(iii) 1869 के अधिनियम में इसलिए भी परिवर्तन करने की आवश्यकता है कि उसमें पुरुष और स्त्रियों को समान दर्जा नहीं दिया गया है । "उसे अद्यतन बनाने के लिए विधानमण्डल हिन्दू विवाह अधिनियम और विशेष विवाह अधिनियम के उपबन्धों से सहायता ले सकता है तथा उस स्थिति में जब विवाह भंग हो गए हों, पुरुषों और स्त्रियों को एक-दूसरे से पृथक् होने के काम को आसान बनाने के लिए अनेकानेक मुद्दों पर विचार कर सकता है ।"

डा० एल० डेसूजा, बम्बई, (15 जनवरी, 1983 के) द एक्जामिनर में प्रकाशित पत्र ।

क्रिश्चियनों को लागू पुरातन विधि के पुनरीक्षण की आवश्यकता है[1] "अन्य धर्मों के संबंध में, विशेष रूप से हिन्दुओं में, प्रगतिशील परिवर्तन हुए हैं जैसा कि हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 से स्पष्ट है जिसमें पारस्परिक सहमति सहित विवाह विच्छेद अनेक आधारों में असमाधेय विवाह-भंग के मामलों में विवाह विच्छेद के लिए संशोधन किए गए हैं । यह न केवल निन्दनीय है बल्कि बहुत खेद की बात है कि ऐसे क्रिश्चियन पति-पत्नी जिनके विवाह भंग हो गए हैं, यातना पूर्ण जीवन जी रहे हैं और सभी प्रकार की ऐसी कठिनाइयों का सामना कर रहे हैं जो उन्हें फिर से विवाह करने से रोकती हैं ।"

एम० सी० अब्राहम, "डिसोल्यूशन आफ़ क्रिश्चियन मैरिज" (फ़रवरी, 1983) क्रिमिनल लॉ जरनल 2, 4 ।

इस लेख के अनुसार, विवाह विच्छेद का कोई और आधार जोड़ने की आवश्यकता नहीं है । "क्रिश्चियन विवाह की रीति आजीवन संयोग की है न कि विलग होने की ।" जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं । अधिकतर विचार इस बात के पक्ष में हैं कि क्रिश्चियनों के बीच विवाह विच्छेद के संबंध में कम से कम, पुरुषों और स्त्रियों के बीच समानता की व्यवस्था की जानी चाहिए ।

---

1. पूर्वगामी पैरा 2.3 ।

अध्याय 4

अकृतता का प्रश्न

चर्च प्राधिकारियों द्वारा दिए गए अकृतता के निर्णय।

4.1. इस विषय पर प्रकाशित अनेकों लेखों और पत्नों में उठाए गए विवाह की अकृतता के प्रश्न के अब कुछ विस्तार से विचार करना आवश्यक है[1]। इस बात को विस्तारपूर्वक इस प्रकार कहा जा सकता है। चर्च प्राधिकारियों द्वारा पवित्न अनुष्ठान के अनुसार संपन्न विवाह, विधि द्वारा मान्य होता है, अतः (यह कहा गया है कि) यह एक विषमता है कि किसी चर्च प्राधिकारी द्वारा धार्मिक विधान के अनुसार किया गया विवाह की अकृतता का निर्णय विधि द्वारा मान्य न हो। यद्यपि उन लेखों और पत्नों में, जिनमें ऐसे निर्णय की मान्यता का प्रश्न उठाया गया है, सुसंगत कानूनी उपबंधों के प्रति कोई निर्देश नहीं किया गया है तथापि यह प्रतीत होता है कि उनमें भारतीय क्रिश्चियन विवाह अधिनियम, 1872 की धारा 5 की ओर इंगित किया गया है जो उन व्यक्तियों के विषय में है जिनके द्वारा अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, भारत में विवाह अनुष्ठापित कराया जा सकता है।

भारतीय क्रिश्चियन विवाह अधिनियम, 1872 की धारा 5।

4.2. भारतीय क्रिश्चियन विवाह अधिनियम, 1872 की धारा 5 निम्नलिखित रूप में है :—

"5. वे व्यक्ति जिनके द्वारा विवाह अनुष्ठापित कराए जा सकते हैं—भारत में निम्नलिखित द्वारा विवाह अनुष्ठापित कराए जा सकते हैं :—

(1) उस व्यक्ति द्वारा जो धर्माध्यक्ष द्वारा अभिषिक्त है, परन्तु यह तब जब वह विवाह ऐसे चर्च के जिसका वह पुरोहित है, नियमों, धार्मिक कृत्यों, कर्मकांडों और रुढ़ियों के अनुसार अनुष्ठापित कराया जाए।

(2) स्काटलैण्ड के चर्च के किसी पादरी द्वारा, परन्तु यह तब जब वह विवाह स्काटलैण्ड के चर्च के नियमों, धार्मिक कृत्यों, कर्मकांडों और रूढ़ियों के अनुसार अनुष्ठापित कराए जाएं;

(3) विवाहों को अनुष्ठापित कराने के लिए इस अधिनियम के अधीन अनुज्ञप्त किसी धर्म-पुरोहित द्वारा;

(4) इस अधिनियम के अधीन नियुक्त किसी विवाह रजिस्ट्रार द्वारा या उसकी उपस्थिति में;

(5) किसी व्यक्ति द्वारा जो भारतीय क्रिश्चियनों के बीच विवाहों के प्रमाण-पत्न देने के लिए इस अधिनियम के अधीन अनुज्ञप्त है।"

धारा के खण्ड (1) और (2) विचाराधीन मुद्दे से विशेष रूप से सुसंगत हैं।

विवाह की अकृतता के संबंध में धार्मिक विधि के नियम।

4.3. चर्च द्वारा किए गए अकृतता के निर्णय को मान्यता देने के सुझाव की हमने सावधानीपूर्वक समीक्षा की है और इसी संदर्भ में, रोमन कैथोलिकों को लागू, विवाह की "अड़चनों" संबंधी धार्मिक विधि के नियमों को भी हमने देखा था। ये नियम काफ़ी विस्तृत हैं। इनमें उपबंधों का एक लम्बा सेट है जो अनेक शताब्दियों में विकसित हुआ प्रतीत होता है और उसका वर्तमान परिष्कृत रूप उसी विकास का परिणाम है। उन नियमों को यहां उद्धृत करना या उनका सारांश देना हम आवश्यक नहीं समझते हैं[2]। किन्तु हमने इस विषय पर ध्यानपूर्वक विचार किया है और हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि किसी चर्च प्राधिकारी द्वारा किए गए अकृतता के निर्णय की मान्यता के लिए विधि में कोई व्यापक उपबंध जोड़ना समुचित नहीं होगा।

---

1. पूर्वगामी अध्याय 3।
2. नियमों का सार परिशिष्ट 2 में दिया गया है। यह हो सकता है हमने जिस स्रोत से इनका सार लिया है वह अद्यतन न हो किन्तु हम समझते हैं कि इनमें कोई सारभूत परिवर्तन नहीं हुए हैं।

हमें भय है कि ऐसा करने से विधि और उसके प्रशासन में काफी भ्रम उत्पन्न हो जाएगा। धार्मिक विधि में विवाह की अकृतता के लिए मान्यता प्राप्त कुछ आधार ऐसे हो सकते हैं जो भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम की धारा 12 द्वारा[1] अभिव्यक्त रूप से अनुज्ञात या विवक्षित रूप से मान्य अकृतता के आधारों के परस्पर व्यापी हों। हम इस धारा की विस्तार से चर्चा अभी करेंगे। यह संभव है कि किसी विशिष्ट मामले में, चर्च प्राधिकारी ने उन तथ्यों का न्यायनिर्णय करते समय जिनकी बाबत अभिकथन है कि वे अकृतता का कोई विशिष्ट आधार गठित करते हैं, मामले का एक पक्ष ध्यान में रखा हो जब कि सिविल न्यायालय, समुचित कार्यवाहियों द्वारा समावेदित किए जाने पर, उन्हीं तथ्यों को भिन्न दृष्टि से देख सकता है।

4.4. एक ही विषय पर दो समानान्तर न्यायनिर्णायक निकायों के सहअस्तित्व से सभी सम्बन्धित व्यक्तियों के लिए गम्भीर समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं। एक लेख में यह विचार व्यक्त किया गया है कि वर्तमान स्थिति से (अर्थात् चर्च प्राधिकारी द्वारा किए गए अकृतता के निर्णय को मान्यता न देने से) पक्षकारों को कठिनाई का सामना करना पड़ता है। किन्तु सुझाए गए समाधान से शायद ही कोई सुधार हो सकता है। उससे तो मामला और बिगड़ सकता है।

दो समानान्तर प्र- कारियों के कारण ि- मता होने की संभावना

4.5. हम इस समय जिस तर्क पर विचार कर रहे हैं, वह भारतीय क्रिश्चियन विवाह अधिनियम, 1872 की धारा 5 पर[2] आधारित प्रतीत होता है। जैसा कि बताया जा चुका है, उस धारा में चर्च के कुछ नियमों के अनुसार अनुष्ठापित विवाहों को मान्यता दी गई है और यह प्रतीत होता है कि प्रस्तुत तर्क यह है कि चूंकि चर्च द्वारा कराए गए विवाह को विधि द्वारा मान्यता प्राप्त है इसलिए चर्च द्वारा किए गए अकृतता के निर्णय को भी विधि द्वारा मान्यता दी जानी चाहिए। किन्तु इस सन्दर्भ में हम यह बताना चाहेंगे कि धार्मिक कृत्यों के अनुसार सम्पन्न विवाह को सिविल न्यायालय द्वारा मान्यता दिए जाने और किसी चर्च प्राधिकारी द्वारा किए गए अकृतता के निर्णय को सिविल न्यायालय द्वारा मान्यता दिए जाने में अन्तर है। इसमें सन्देह नहीं है कि विवाह का सम्बन्ध एक विशिष्ट धार्मिक कर्म से उत्पन्न हो सकता है किन्तु यदि उस सम्बन्ध के अस्तित्वशील रहने (या तथाकथित अस्तित्वशील रहने) के दौरान यह प्रश्न उठता है कि क्या ऐसी प्रास्थिति सृजित की जा सकती है तो साक्ष्य विधि के अनुपालन में, अभिकथित विवाह को साबित या नासाबित करने के लिए कुछ अन्य तात्विक सामग्री सदा उपलब्ध होगी[3]। सबसे महत्वपूर्ण साक्ष्य पक्षकारों के सहवास का तथ्य और समाज में पति-पत्नी के रूप में उनकी प्रास्थिति का स्वीकार किया जाना होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि न्यायालय वैवाहिक प्रास्थिति के अस्तित्व के बारे में तथ्यों सम्बन्धी अन्वेषण में केवल धार्मिक कृत्यों के सम्पन्न किए जाने के साक्ष्य तक सीमित नहीं होगा।

विवाह की मान्यता अकृतता की मान्यता अन्तर।

विवाह के सबूत के बारे में स्थिति यही है। जहां यह प्राधिकारी द्वारा अनुदत्त अकृतता के निर्णय के अस्तित्व या प्रभाव से है वहां स्थिति भिन्न होगी। यदि किसी न्यायालय में यह प्रश्न उठता है कि क्या ऐसा कोई निर्णय वास्तव में किया गया है या (यदि किया गया है तो) क्या वह विधिमान्य रूप से किया गया है, तो न्यायालय के समक्ष जांच का आधार केवल वह निर्णय होगा। किसी भी न्यायालय के लिए इस प्रश्न का सन्तोषप्रद रूप से अवधारण करना आसान काम नहीं होगा। वह एक ऐसी कठिनाई है जो ऐसी अन्य विषमताओं के अतिरिक्त होगी जो तब उत्पन्न हो सकती है जब एक ही विवाद का न्यायनिर्णयन करने वाले दो समानान्तर प्राधिकारियों को विधि में मान्यता देनी हो। इन विषमताओं का हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं।[4]

विवादग्रस्त मुद्दे के बारे में सामान्य रूप से हमारा यही दृष्टिकोण है और परिणामस्वरूप इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए, इस सुझाव को स्वीकार करना तर्कसंगत नहीं होगा कि चर्च के प्राधिकारियों द्वारा किए गए अकृतता के निर्णयों को सिविल न्यायालयों द्वारा मान्यता दी जानी चाहिए।

---

1. आगामी पैरा 4.6।
2. पूर्वगामी पैरा 4.2।
3. देखिए भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 50 तथा विशेष रूप से उस अधिनियम की धाराएं 6 से 9 तक और 11।
4. देखिए पूर्वगामी पैरा 4.4।

वर्तमान विधि में किसी सारभूत कमी का न होना।

4.6. फिर भी हमने इस सन्दर्भ में उठाए गए ठोस मुद्दों पर ध्यानपूर्वक गौर करने के अवसर का लाभ उठाया है। इस प्रयोजन के लिए हमने इस विषय पर प्रकाशित लेखों की विस्तार से समीक्षा की है[1]। हम देखते हैं कि (एक अपवाद को छोड़कर जिसकी हम अभी चर्चा करेंगे)[2] उनमें (भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम में) धार्मिक विधि में मान्य अकृतता के विशिष्ट आधार से जुड़ी हुई किसी विनिर्दिष्ट कमी का ठीक-ठीक उल्लेख नहीं किया गया है। धार्मिक विधि के सुसंगत उपबन्धों[3] का प्रारम्भिक अध्ययन करने पर हम इस बात से सन्तुष्ट नहीं हैं कि विवादग्रस्त मुद्दे पर भारतीय विवाह अनुच्छेद अधिनियम में तुरन्त कोई संशोधन करने की आवश्यकता है। इस अधिनियम की धारा 19, जिसे हम आगे उद्धृत कर रहे हैं, के अन्तर्गत ऐसे अनेक मामले आ जाने चाहिएं जिनमें विवाह में किसी गम्भीर त्रुटि को अकृतता की डिक्री के औचित्य के रूप में माना जा सकता है। यदि विधि की अधिक गहन समीक्षा करने पर यह पाया जाता है कि गम्भीर कठिनाई कारित करने वाली कुछ ऐसी परिस्थितियां हैं जो उस धारा के अन्तर्गत नहीं आती हैं तो विवाह विच्छेद अधिनियम का व्यापक पुनरीक्षण करते समय उस बारे में विचार किया जा सकता है। किन्तु जैसा कि ऊपर कहा गया है, विचाराधीन मुद्दे पर तुरन्त किसी सुधार की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है।

विवाह विच्छेद अधिनियम की धारा 19।

4.7. भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम, 1869 की धारा 19 इस प्रकार है :—

"19. **डिक्री के आधार**—ऐसी डिक्री निम्नलिखित कारणों में से किसी पर दी जा सकेगी:—

(1) प्रत्यर्थी विवाह के समय तथा वाद संस्थित किए जाने के समय नपुंसक था या थी,

(2) पक्षकार (प्राकृतिक या विधिक) रक्त सम्बन्ध के आधार पर प्रतिषिद्ध डिग्री के अथवा विवाह सम्बन्ध के आधार पर प्रतिषिद्ध डिग्री के अन्दर हैं,

(3) पक्षकारों में से कोई विवाह के समय पागल या जड़ था या थी,

(4) पक्षकारों में से किसी का पूर्ववर्ती पति या किसी की पूर्ववर्ती पत्नी उस विवाह के समय जीवित था या जीवित थी और ऐसे पूर्ववर्ती पति या पत्नी के साथ विवाह उस समय प्रवृत्त था,

इस धारा की कोई बात इस आधार पर कि दोनों में से किसी पक्षकार की सहमति बल या कपट से अभिप्राप्त की गई थी, विवाह की अकृतता की डिक्रियां देने की उच्च न्यायालय की अधिकारिता को प्रभावित नहीं करेगी।"

अब हम इस बात की समीक्षा करेंगे कि क्या इस धारा में अकृतता के किसी महत्वपूर्ण आधार को, जिसका पक्षपोषण इस विषय पर व्यक्त विचारों में किया गया हो, छोड़ दिया गया है।

धार्मिक विधि में अकृतता ठोस बातों पर विचार किया गया।

4.8. इस सम्बन्ध में हम पुनः यह बता देना चाहेंगे कि विद्यमान विधि दृष्टिकोण में त्रुटियों के यदि कोई हैं, बारे में ठोस बातें इस विषय पर केवल एक लेख में कही गई हैं। यह भी केनेथ ए० फ़िलिप्स का लेख है। चर्च द्वारा किए गए अकृतता के निर्णय को सिविल न्यायालयों द्वारा मान्यता दिए जाने की दलील पेश करते हुए वह कहते हैं कि कैथोलिक चर्च की धार्मिक विधि द्वारा विवाह की अकृतता के लिए अधिकथित अन्य शर्तों में निम्नलिखित हैं :—

(1) आवश्यक वैवाहिक बाध्यताओं और कर्तव्यों को ग्रहण और उनका पालन करने की असमर्थता।

(2) किसी गुण के सम्बन्ध में, अन्य पक्षकार द्वारा जानबूझकर प्रवंचना जो स्वयं ऐसी है कि उससे दाम्पत्य जीवन में गम्भीर रूप से गड़बड़ी पैदा होती है तथा यह प्रवंचना अन्य पक्षकार की सहमति प्राप्त करने के लिए की जाए।

---

1. पूर्वगामी अध्याय 3।
2. आगामी पैरा 4.8।
3. देखिए पूर्वगामी पैरा 4.3।
4. अकृतता की डिक्री।

(3) विवाह करने की इच्छा या आशय का अभाव[1]। इन तीन परिस्थितियों पर ध्यान केन्द्रित करते हुए हमने इस प्रश्न पर कुछ सोच-विचार किया है कि क्या भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम, 1869, जैसा वह इस समय है, में क्रिश्चियनों के बीच वैवाहिक अनुतोष का एक आधार गठित करने के रूप में इन परिस्थितियों के लिए उपबन्ध है, और यदि है तो कहां तक।

विवाह विच्छेद अ[धि]नियम से तुलना।

4.9. श्री फ़िलिप्स ने जिन ठोस परिस्थितियों का उल्लेख किया है उनमें से एक के बाद दूसरी पर विचार करने पर हम देखते हैं कि ऊपर वर्णित पहली परिस्थिति (किसी पति या पत्नी की वैवाहिक कर्तव्यों को ग्रहण आदि करने की असमर्थता) भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम, 1869 की धारा 19(1) के अंतर्गत सारभूत रूप से आ जाती है। उस धारा के अनुसार[3] प्रत्यर्थी की विवाह के समय और बाद संस्थित किए जाने के समय नपुंसकता, सिविल न्यायालय को विवाह की अकृतता की डिक्री देने के लिए सशक्त करती है।

(i) जानबूझ प्रवंचना।

4.10. ऊपर वर्णित दूसरी परिस्थिति[4] (जानबूझकर प्रवंचना) भी भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम की धारा 19 के अंतिम पैरा के अंतर्गत आ जाती है। धारा के उस भाग में, उच्च न्यायालय की इस आधार पर विवाह की अकृतता की डिक्री देने की अधिकारिता को परिरक्षित रखा गया है कि दोनों में से किसी पक्षकार की सहमति, बल या कपट से प्राप्त की गई थी। निस्संदेह (इस विशिष्ट आधार पर) ऐसी डिक्री देने की अधिकारिता उच्च न्यायालय तक ही सीमित है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि भारत में उच्च न्यायालयों ने इस विषय पर अपनी अधिकारिता सुप्रीम कोर्टों से विरासत में पाई है और उन सुप्रीम कोर्टों ने (विवाध्यता या कपट के आधार पर) अकृतता की डिक्री देने की शक्ति गिरजे संबंधी न्यायालयों से विरासत में पाई थी[5] यदि इस अधिकारिता के इस प्रकार सीमित होने से, वर्तमान स्थिति गंभीर कठिनाई कारित करती है तो निस्संदेह, इस बात पर उस समय विचार किया जा सकता है जब संपूर्ण विवाह विच्छेद विधि का पुनरीक्षण किया जाय[6]। किन्तु जिस बात की ओर ध्यान आकर्षित करने की आवश्यकता है वह यह है कि इस समय भी क्रिश्चियन को लागू होने वाली विधि में वैवाहिक अनुतोष के क्षेत्र में कपट या विवाध्यता की परिस्थितियों से निपटने के लिए कुछ उपाय उपबंधित हैं। अस्तु वर्तमान विधि को सारभूत रूप से अपर्याप्त नहीं माना जा सकता है।

यह भी नहीं कहा जा सकता है कि न्यायालयों में उन सिद्धांतों की भावना को नहीं पकड़ा है जिन पर प्रश्नगत अधिकारिता का प्रयोग किया जा सकेगा। प्रकाशित निर्णयों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि कुल मिलाकर न्यायालयों ने कपट की धारणा की व्याख्या करते हुए इस तथ्य पर बल दिया है कि विधिमान्य विवाह का मर्म, उस व्यक्ति के संबंध में जिससे विवाह किया गया है[7] और विवाह कर्म के संबंध में[8] स्वतंत्र सहमति है। कुल मिलाकर ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान विधि में कपट के गम्भीर मामलों के लिए व्यवस्था है।

(ii) विवाह करने [की] इच्छा का अभाव।

4.11. अब हम धार्मिक विधि में मान्यताप्राप्त अकृतता के लिए तीसरे आधार को (जिसका उल्लेख श्री फिलिप्स द्वारा किया गया है[9]) विवाह करने के लिए इच्छा या आशय का अभाव, को लेते हैं। कुछ हद तक, यह परिस्थिति, अब भी भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम के अधीन आ जाएगी यदि अन्य पक्षकार कपट का दोषी रहा हो (धारा 19 अंतिम पैरा, भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम)[10]। उस स्थिति में ऐसा मामला इसके अन्तर्गत नहीं आता है जब वह पक्षकार जिसके विरुद्ध अनुतोष की मांग की गई है, दावेदार की मनःस्थिति (अर्थात् दावेदार में विवाह करने की इच्छा का अभाव) से अनभिज्ञ है। यह पति या पत्नी में से एक की ओर से ऐसे एकपक्षीय भ्रम का मामला है जो दूसरे पक्षकार द्वारा पैरवी नहीं किया गया है। उसको छोड़कर, इच्छा की सभी गंभीर त्रुटियों के लिए वर्तमान विधि में उपबन्ध किया गया प्रतीत होता है।

पूर्वगामी पैरा 3.7--तारीख 21 सितम्बर, 1982।

द टाइम्स आफ इंडिया में प्रकाशित लेख।

3. पूर्वगामी पैरा 4.7।
4. पूर्वगामी पैरा 4.8।
5. टी० सरोजा देवी बनाम क्रिस्टी फांसीज, ए० आई० आर०, 1955 ए० पी० 178।
6. और आगे विचारार्थ मुद्दा (उच्च न्यायालयों की अधिकारिता)।
7. अयुकुत बनाम अयुकुत, ए० आई० आर० 1940, कलकत्ता 75। (विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1877 के अधीन निर्णय)।
8. मेहता बनाम मेहता (1945) 2 आल० ई० आर० 690 (यह इंग्लैण्ड का मामला है किन्तु भारत में भी यही स्थिति होगी।
9. पूर्वगामी पैरा 4.8।
10. पूर्वगामी पैरा 4.10।

विवाह करने की इच्छा का अभाव-स्थिति का विश्लेषण।

4.12. आइए अब हम उन विभिन्न संभव बातों की जिनसे इच्छा का अभाव प्रकट होता है चर्चा करके ऊपर बताई गई बात पर विस्तार से विचार करें। विवाह करने की इच्छा का अभाव साधारणतया निम्नलिखित बातों में से किसी एक के कारण उत्पन्न होता है :—

(i) पागलपन[1] ;

(ii) विरोधी पक्षकार के कपट द्वारा प्रेरित भ्रम[2] ;

(iii) विवाध्यता[3] ;

(iv) भ्रम[4] जो विरोधी पक्षकार के कपट द्वारा प्रेरित नहीं है।

क्रिश्चियनों को लागू वर्तमान विधि में जो भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम की धारा 19(1) में अन्तर्विष्ट है, प्रथम तीन बातों के लिए व्यवस्था है[5]। चौथी परिस्थिति अर्थात् वह परिस्थिति जिसमें ऐसा कपट **जो विरोधी पक्षकार द्वारा प्रेरित नहीं है** ऐसे "विवाह" के लिए जिम्मेदार है जो विवाह करने की इच्छा के बिना किया गया है, भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम, 1869 की परिधि के अन्तर्गत नहीं आएगी। किन्तु हम आशा करते हैं कि ऐसे मामले अधिक नहीं होंगे और इसलिए उनके संबंध में यह आवश्यक नहीं है कि अधिनियम के व्यापक पुनर्विलोकन से अलग-थलग कोई सुधार तुरन्त किया जाए।

अकृतता की घोषणा का उपबंध करने वाले विधि के अन्य उपबंध।

4.13. इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम की धारा 19 के अतिरिक्त[6], समुचित आधारों पर विवाह की अकृतता की घोषणा प्राप्त करने के लिए विधि के सामान्य सिद्धान्तों पर भी अनुतोष का दावा किया जा सकता है। अस्तु, विवाह विच्छेद अधिनियम की धारा 4 के प्रति निर्देश से दिल्ली के एक मामले में[7] यह अभिनिर्धारित किया गया था कि आवश्यक धार्मिक कर्मों के अपालन के आधार पर अकृतता की घोषणा की मांग के लिए वाद आरंभिक सिविल अधिकारिता वाले साधारण न्यायालय में, न कि उच्च न्यायालय में संस्थित किया जाना चाहिए। अप्रत्यक्ष रूप से इसका अर्थ यह है कि उक्त आधार पर अनुतोष का दावा विधि के सामान्य नियमों के अधीन किया जा सकता है।

यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि जहां तक किसी विवाह को अकृत और शून्य घोषित करने के लिए वाद इस आधार पर संस्थित किया गया है कि अर्जीदार अपने विवाह के समय मूढ़ था और यह कि अर्जीदार की सहमति कपट से प्राप्त की गई थी, उच्च न्यायालय को उस वाद को ग्रहण करने की अधिकारिता है। किन्तु आवश्यक धार्मिक कर्मों के अपालन के आधार पर आधारित वाद साधारण सिविल न्यायालय में फ़ाइल किया जाना चाहिए[8-9]।

विवाह की विधिमान्यता के प्रश्न स्वीय विधि के प्रति निर्देश से भी उठाए गए हैं। अस्तु, कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि रोमन कैथोलिक स्त्री की स्वीय विधि उसे किसी याहूदी से विवाह करने से प्रतिषिद्ध करती है।

---

1. देखिए धारा 19(2) भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम, 1869।

2. देखिए धारा 19, अंतिम पैरा, भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम, 1869।

3. देखिए धारा 19, अंतिम पैरा भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम, 1869।

4. अभी यह भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम, 1869 के अंतर्गत नहीं आता है।

5. पूर्वगामी पैरा 4.7।

6. पूर्वगामी पैरा 4.7।

7. जार्डेन डाइनानडोह बनाम स्वर्णजीत सिंह चोपड़ा, ए० आई० आर० 1982 एन० ओ० सी० 313 (दिल्ली) (दिसम्बर अंक) 1980 का वैवाहिक मामला सं० जिसका विनिश्चय 19 फरवरी 1982 को हुआ।

8. टाइटिल बनाम अल्फ्रेड राबर्ट जौन्स, ए० आई० आर० 1934, 273।

9. ए० आई० आर० 1923 पटना 301 के प्रति निर्देश किया गया।

इस प्रकार किए गए विवाह कर्म से विधिमान्य विवाह गठित नहीं होता है[1]। किसी विवाह को अकृत घोषित कराने के लिए वाद विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1877 की धारा 42 (अब विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 34) के अधीन फ़ाइल किया जा सकता है[2]।

4.14. इस संबंध में विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 34 उल्लेखनीय है[3] जो न्यायालय द्वारा दिए जाने वाले घोषणात्मक अनुतोष के संबंध में है। वह धारा इस प्रकार है :—

विनिर्दिष्ट अनुतो... नियम, 1963 क... 34।

> 34. कोई व्यक्ति, जो किसी विधिक हैसियत का या किसी सम्पत्ति के बारे में किसी अधिकार का हकदार हो, ऐसे किसी व्यक्ति के विरुद्ध जो ऐसी हैसियत का या ऐसे अधिकार के हक का प्रत्याख्यान करता हो वाद संस्थित कर सकेगा और न्यायालय स्वविवेक में उस विवाद में यह घोषणा कर सकेगा कि वह ऐसा हकदार है और वादी के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह उस वाद में किसी अतिरिक्त अनुतोष की मांग करे :
>
> परन्तु कोई भी न्यायालय वहां ऐसी घोषणा नहीं करेगा जहां कि वादी हक की घोषणा मात्र के अतिरिक्त कोई अनुतोष मांगने के योग्य होते हुए भी वैसा करने में लोप करे।
>
> **स्पष्टीकरण**—सम्पत्ति का न्यासी ऐसे हक का "प्रत्याख्यान करने में हितबद्ध व्यक्ति" है जो ऐसे व्यक्ति के हक के प्रतिकूल हो जो अस्तित्व में नहीं है और जिसके लिए वह न्यासी होता यदि वह व्यक्ति अस्तित्व में आता।

4.15. विवाह की अकृतता की घोषणा संबंधी कानूनी उपबंधों की वर्तमान स्थिति को ध्यान में रखते हुए और ऐसी अन्य बातों को देखते हुए जिसका उल्लेख हमने इस अध्याय के प्रथम कुछ पैराओं में किया है, हम चर्च प्राधिकारियों द्वारा किए गए अकृतता के निर्णयों की सिविल न्यायालयों में मान्यता के लिए कोई सिफ़ारिश करना आवश्यक नहीं समझते हैं।

चर्च द्वारा अकृतत... निर्णय को मान्यता के लिए उपबंध कर... आवश्यकता नहीं है।

---

1. जूडे बनाम जूडे, ए० आई० आर० 1949, कलकत्ता 563।
2. आगामी पैरा 4.14।
3. धारा 34, विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963।

अध्याय 5

परस्पर सहमति

परस्पर सहमति--उच्चतम न्यायालय के निर्णय में प्रेक्षण।

5.1. जब हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि क्या परस्पर सहमति के आधार पर विवाह विच्छेद अनुज्ञात किया जाना चाहिए। यह प्रश्न कि भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम, 1869 के अधीन, परस्पर सहमति विवाह विच्छेद का आधार कहां तक है उच्चतम न्यायालय के समक्ष विचारार्थ आया था[1]। यह अभि-निर्धारित किया गया कि न्यायालय उन आधारों में जो अधिनियम की धारा 10 में वर्णित है, कोई नया आधार जोड़ा नहीं जा सकता है तथा इंगलैण्ड में मान्यताप्राप्त आधारों के आधार पर विवाह विच्छेद के आधारों में विस्तार करने के लिए अधिनियम की धारा 7 का सहारा नहीं लिया जा सकता है। न्यायाधीशों ने बताया कि यह काम संसद् का है कि वह इस बात पर विचार करे कि परस्पर सहमति द्वारा विवाह विच्छेद के लिए कोई उपबंध अधिनियम में सम्मिलित किया जाना चाहिए। न्यायालय, कानून में कोई ऐसा उपबंध जोड़ कर जो कभी अधिनियमित नहीं किया गया है, विधायी नीति का विस्तार या उसमें वृद्धि नहीं कर सकता है। एक न्यायाधीश, न्यायाधीश श्री चैनप्पा रेड्डी ने अपने सहमत निर्णय में, पुरुषों और स्त्रियों के बीच समानता की आवश्यकता पर बल देने के बाद इस विषय पर विधि में सुधार के बारे में निम्नलिखित विचार व्यक्त किया :

"जी हां मैं (अपीलार्थी की काउंसेल कुमारी लिलि थॉमस के इस विचार से सहमत हूं कि प्रत्येक विवाहित दम्पत्ति को, चाहे वह कोई भी धर्म मानता हो और चाहे उनका विवाह किसी भी रीति से हुआ हो परस्पर सहमति द्वारा विवाह विच्छेद उपलब्ध होना चाहिए। किसी भी विधि को किसी पुरुष और स्त्री को जो विलग होने के लिए सहमत है एक होने के लिए विवश नहीं करना चाहिए। यदि वे दो व्यक्ति के रूप में रहना चाहते हैं तो विधि को उन्हें एक होने के लिए क्यों आग्रह करना चाहिए ?"

किन्तु इन विचारों के साथ एक विशेषक जोड़ा गया है जो निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया गया है :—

"परन्तु मेरे पास एक विशेषक है। स्त्री का संरक्षण आवश्यक किया जाना चाहिए। हमारा समाज आज भी विच्छिन्न-विवाह स्त्री को सन्देह की दृष्टि से देखता है। विवाह विच्छेद से उसके अपने अस्तित्व को बनाए रखने के अवसर कम हो जाते हैं। अतः उस विधि को जो विवाह विच्छेद मंजूर करता है उस स्त्री के लिए कुछ आर्थिक स्वतंत्रता की व्यवस्था करनी चाहिए। यह बात हर हालत में होनी चाहिए चाहे विवाह विच्छेद का आधार कुछ भी रहा हो—चाहे वह आधार परस्पर सहमति हो, असमाधेय विवाह-भंग हो या स्वयं स्त्री का दोष हो। प्रत्येक विवाह विच्छेद एक समस्या का समाधान करता है और दूसरी समस्या का सृजन करता है। दोनों ही समस्याओं का समाधान करने की आवश्यकता है चाहे विवाह-भंग के लिए जिम्मेदार कोई भी हो। यदि विवाह विच्छेद विधि को वास्तविक रूप में सफल होना है तो उसे पत्नी की आर्थिक स्वतंत्रता के लिए उपबंध करना चाहिए भारतीय समाज का गठन इस प्रकार का है कि स्त्री साधारणतया असहाय होती है और उसका विवाह विच्छेद हो जाने पर उसकी स्थिति और बिगड़ जाती है। यह आवश्यक है कि विधि उसके हितों का संरक्षण करे चाहे गलती उसी ने की हो, नहीं तो वह निराश्रय हो जाएगी और समाज के लिए एक भार बन जाएगी।"

किसी संशोधन की सिफारिश नहीं की गई।

5.2. हमने इस निर्णय पर और उसमें से ऊपर उद्धृत विचारों पर ध्यान दिया है। यह प्रश्न कि क्या परस्पर सहमति को क्रिश्चियनों के बीच विवाह विच्छेद के एक आधार के रूप में जोड़ा जाए, ऐसा प्रश्न है जिस पर उपयुक्त समय पर विचार किए जाने की आवश्यकता है। प्रस्तुत रिपोर्ट में हम इस विषय पर कोई विचार व्यक्त नहीं कर रहे हैं जब सम्पूर्ण भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम का पुनरीक्षण किया जाएगा तब इस पर विचार किया जा सकता है[2]।

1. रैनाल्ड राजामणी बनाम भारत संघ, ए० आई० आर० 1982, एस० सी० 1261, 1365 (सितम्बर)।

2. जब विवाह विच्छेद अधिनियम का पुनरीक्षण किया जाए तब विचारार्थ प्रश्न।

अध्याय 6

सिफारिश

6.1. इस विषय पर व्यक्त किए गए विचारों पर ध्यानपूर्वक गौर करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम, 1869 की धारा 10 में निश्चित रूप से विभेद का जो तत्व है उसे दूर करने के लिए उस धारा का तुरन्त संशोधन करने की आवश्यकता है[1]। इसका यह अर्थ नहीं है कि हमने इस रिपोर्ट के इससे पहले के अध्यायों में[2] जो अन्य और अधिक अमूल अनुकल्पों का उल्लेख किया है; उनका अब कोई सवाल ही नहीं उठता है। गुणागुण के आधार पर, अन्य अनुकल्पों में से कुछ के बारे में बहुत कुछ कहा जा सकता है। तथापि, इस विषय पर सुधार के लिए प्रस्तावों के विगत इतिहास[3] का ध्यान रखते हुए हम फ़िलहाल उपर्युक्त सिफ़ारिश से अपना संतोष कर लेंगे। भारतीय विवाह विच्छे[द] अधिनियम की धारा 1[0] के संबंध में सिफारिश।

6.2. यहां यह बताना उचित होगा कि हम उपर्युक्त रूप में धारा 10 का संशोधन करने को सर्वोच्च महत्व क्यों देते हैं। हम ऐसे संशोधन को एक संवैधानिक अनिवार्यता समझते हैं[4]। पहले और दूसरे अनुकल्[प] की तुलना।

हमारा विचार है कि यदि पुरुषों और स्त्रियों के बीच विभेद से बचने के संदर्भ में, इस धारा को विधि के समक्ष समानता और विधियों के समान संरक्षण के संवैधानिक आदेश की कसौटी पर खरा उतरना है तो यह संशोधन आवश्यक है। यदि संसद् इस विभेद को दूर नहीं करती है तो न्यायालय, मौलिक अधिकारों के अतिलंघन का उपचार करने की अपनी अधिकारिता के प्रयोग में, किसी दिन इस धारा को शून्य घोषित करने के लिए आबद्ध है। एक बार ऐसा होने पर, विधि में एक रिक्ति सृजित हो जाएगी और तब कानूनी उपबन्धों में सुधार करना आज की अपेक्षा अधिक अत्यावश्यक हो जाएगा। इस दृष्टि से, संवैधानिक कारणों से, धारा 10 का यथा उपर्युक्त संशोधन करने का मामला बहुत सशक्त है। समानता के संवैधानिक आदेश के अलावा भी ऐसा संशोधन गुणागुण के आधार पर बहुत उचित होगा।

6.3. अतः हमारी उस सिफ़ारिश को जिसका उल्लेख हमने ऊपर किया पूर्विकता दी जानी चाहिए। दूसरा कदम, उपर्युक्त दूसरे अनुकल्प[5], अर्थात् विवाह विच्छेद के कुछ नए आधार जोड़ने पर विचार करना होगा। जिन बातों पर अधिक आवश्यक रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है उसके साथ तीसरे अनुकल्प[6] (असमाधेय विवाह-भंग) को मिलाने की जरूरत नहीं है। उसके कारण, विधि में सुधार करने प्रयास की सफ़लता में कमी आ सकती है जिसका परिणाम यह होगा कि इस प्रक्रिया में, बहुत जरूरी सुधार भी विफ़ल हो सकते हैं। पूर्विकताएं।

जहां तक चौथे अनुकल्प[7] का संबंध है, हम समझते हैं कि विधि के व्यापक सुधार के लिए और विधि आयोग की पूर्वतर रिपोर्टों में[8] की गई सिफ़ारिशों के अनुसार इस विषय पर दोनों अधिनियमों का समेकन करने के लिए सशक्त मामला हो सकता है। किन्तु हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते हैं कि ऐसे विधायी प्रस्ताव के युक्तियुक्त रूप से कम समय के भीतर पारित किए जाने की कोई संभावना होगी।

---

1. अधिनियम के अन्य उपबंधों में पारिणामिक परिवर्तन अपेक्षित हो सकते हैं।
2. पूर्वगामी अध्याय 2।
3. पूर्वगामी अध्याय 1।
4. पूर्वगामी पैरा 2.3।
5. पूर्वगामी पैरा 2.4।
6. पूर्वगामी पैरा 2.5।
7. चौथा अनुकल्प-पूर्वगामी पैरा 2.6।
8. पूर्वगामी अध्याय 1।

84-M/J(N)176MofLJ&CA—250 Copies—19-11-84—GIPS.

भावी सुधारों के संबंध में आशा।

6.4. इस कारण से, उस संशोधन को पूर्विकता दी जानी चाहिए जिसकी सिफ़ारिश हम पुरुषों और स्त्रियों के बीच समानता को लागू करने के लिए कर रहे हैं। इस रिपोर्ट में दूसरे और चौथे अनुकल्पों[1] के अंतर्गत जिन सुधारों की चर्चा की गई है उन पर भी यथासमय गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए। हम अत्यंत गंभीरता से यह आशा करते हैं कि इस रिपोर्ट के भेजे जाने पर सरकार इस रिपोर्ट में की गई अत्यन्त विनम्र सिफ़ारिश को अविलम्ब क्रियान्वित करना सुविधाजनक पाएगी। हम यह आशा भी करते हैं कि तब इस विषय पर विधि में अन्य सुधारों की बात पर, जिनका हमने उल्लेख किया है, विचार करने के लिए माहौल तैयार हो जाएगा।

ठोस सिफारिश।

6.5. हमारी ठोस सिफ़ारिश यह है कि यह अत्यावश्यक है कि भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम, 1869 की धारा 10 का, विभेद के तत्व को दूर करने के उद्देश्य से, पुनरीक्षण किया जाए। क्रिश्चियन पत्नी को भी विवाह विच्छेद के एक आधार के रूप में जार-कर्म का आधार (गंभीरता को बढ़ाने वाली या सहवर्ती अन्य परिस्थितियों को साबित करने की इस समय जो आवश्यकता है उसके बिना) उपलब्ध होना चाहिए। धर्म परिवर्तन के बाद दूसरा विवाह, का आधार (जो इस समय केवल पत्नी को उपलब्ध है) पति को विवाह विच्छेद के एक आधार के रूप में उपलब्ध कराने के लिए इस अवसर का लाभ उठाया जाना चाहिए।

भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम की धारा 10 के संशोधन की सिफारिश।

6.6. ऊपर जो चर्चा की गई है उसके प्रकाश में, हम सिफारिश करते हैं कि भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम, 1869 की धारा का पुनरीक्षण निम्नलिखित रूप में किया जाना चाहिए :—

भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम का 1869 (पुनरीक्षित) की धारा 10—"10. **विवाह विच्छेद के लिए पति कब अर्जी दे सकेगा**—कोई पति जिला न्यायालय या उच्च न्यायालय को यह अनुरोध करते हुए अर्जी प्रस्तुत कर सकेगा कि उसका विवाह इस आधार पर विघटित कर दिया जाए कि उसके **अनुष्ठापन** के बाद उसकी पत्नी ने,

(क) ईसाई धर्म के बदले में कोई दूसरा धर्म मान लिया है और अन्य पुरुष के साथ किसी प्रकार का विवाह कर लिया है, या

(ख) जारकर्म की दोषी हुई है।

विवाह विच्छेद के लिए पत्नी कब अर्जी दे सकेगी—कोई पत्नी जिला न्यायालय या उच्च न्यायालय को यह अनुरोध करते हुए अर्जी प्रस्तुत कर सकेगी कि उसका विवाह इस आधार पर विघटित कर दिया जाए कि उसके अनुष्ठान के बाद उसके पति ने,

(क) ईसाई धर्म के बदले में कोई दूसरा धर्म मान लिया है और अन्य स्त्री के साथ किसी प्रकार का विवाह कर लिया है, या

(ख) जारकर्म . . . या बलात्संग, गुदामैथुन अथवा पशुगमन का दोषी रहा है।"

भारतीय विवाह विच्छेद-अधिनियम के अन्य उपबंधों के संबंध में सिफारिश।

6.7. अधिनियम के अन्य उपबन्धों में, जिनमें विवाह विच्छेद के आधारों के प्रति निर्देश हो, परिणामिक परिवर्तन आवश्यक हो सकते हैं;

1. पूर्वगामी अध्याय 2।

(के० के० मैथ्यू)
अध्यक्ष — ह०

नसीरुल्लाह बेग)
सदस्य — ह०

(जे० पी० चतुर्वेदी)
सदस्य — ह०

(पी० एस० बक्शी)
अंशकालिक सदस्य — ह०

(सी० एच० रामकृष्णराव)
सदस्य सचिव — ह०

तारीख : 17 मई, 1983

परिशिष्ट 1

भारतीय वैवाहिक विधि में अनुतोष के आधार

भारतीय वैवाहिक कानूनों में विवाह विच्छेद के और अन्य वैवाहिक अनुतोष (जिसके अंतर्गत अकृतता भी है) के लिए आधार निम्नलिखित हैं :—

(क) जारकर्म

(ख) द्विविवाह

(ग) अन्य धर्म में संपरिवर्तन

(घ) क्रूरता[1] (भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम की धारा 22 के अधीन क्रूरता केवल न्यायिक पृथककरण के लिए एक आधार है)

(ङ) किसी विनिर्दिष्ट अवधि के लिए अभित्यजन[2]

(च) विवाध्यता (अकृतता का आधार)

(छ) व्यभिचार[3]

(ज) कपट (अकृतता या विवाह विच्छेद के लिए आधार)—विभिन्न अधिनियमों में स्थिति अलग-अलग है।

(झ) कारावास[4]

(ञ) पागलपन[5]

(ट) कुष्ठ[6]

(मानसिक अप्रसामान्यता–देखिए "पागलपन")

(ठ) विवाहोत्तर सम्भोग का न होना[7]

(ड) प्रत्यास्थापना या न्यायिक पृथक्करण के लिए डिक्री के पश्चात् सहवास का पुनरारम्भ न किया जाना[8]

(ढ) भरणपोषण के लिए डिक्री के पश्चात् सहवास का पुनरारम्भ न किया जाना[9]

(ण) गर्भधारण (पत्नी का पति से भिन्न किसी व्यक्ति द्वारा विवाहपूर्व गर्भधारण–अकृतता का आधार)

(त) वेश्यावृत्ति—पत्नी को उसके लिए विवश करना[10]

(थ) बलात्संग, गुदामैथुन या पशुगमन[11]

(द) संसार से सन्यास लेना[12]

(ध) अप्राकृतिक अपराध[13]

(न) रतिज रोग[14]

(इन आधारों में से कुछ भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम में भी आते हैं)।

---

1. देखिए धारा 13(1)(1क), हिन्दू विवाह अधिनियम (के साथ क्रूरता का व्यवहार किया गया)।
2. देखिए धारा 13(1)(1ख) हि० वि० अ० (कम से कम दो वर्ष अभित्यक्त रखा है)।
3. देखिए धारा 32(घ), पारसी विवाह और विवाह विच्छेद अधिनियम।
4. देखिए धारा 32(च) पा० वि० वि० अ० (7 वर्ष के लिए कारावास)।
5. देखिए धारा 13(1)(iii), हि० वि० अ० तथा धारा 32(ख) पा० वि०वि० अ०।
6. देखिए धारा 13(1)(iv) हि० वि० अ०।
7. देखिए धारा 32(क), पा० वि० वि० अ०।
8. देखिए धारा 13(1क), हि० वि० अ०।
9. देखिए धारा 13(2)(ii), हि० वि० अ०।
10. देखिए धारा 32(ङ), पा० वि० वि० अ०।
11. देखिए धारा 32(2)(ii), हि० वि० अ०।
12. देखिए धारा 13(1)(vi), हि० वि० अ०।
13. देखिए धारा 32 (घ), पा० वि०वि० अ०।
14. देखिए धारा 13(1)(v), हि० वि० अ०।

परिशिष्ट 2

धर्म विधि से संबंधित उद्धरण[1]

अड़चनों का वर्गीकरण :

1. अपनी उत्पत्ति के अनुसार या तो दैवी नियम की या चर्च संबंधी विधि की होती है,

2. अपने प्रभाव के अनुसार **वर्जनात्मक** (मात्र प्रतिषेधात्मक) या **शून्यकारी** (अविधिमान्यकारी) होती है (धर्म नियम 1036),

3. कतिपय अन्य व्यक्तियों पर ध्यान दिए बिना अथवा केवल उनके संबंध में किसी व्यक्ति को जिस रूप में प्रभावित करती हैं उसके अनुसार **आत्यंतिक** या सापेक्ष होती हैं,

4. बाहरी फ़ोरम में उन्हें साबित किया जा सकता है या नहीं, इसके अनुसार **प्रकट** या **गुप्त** होती हैं (धर्म नियम 1037);

5. अपनी अस्तित्वावधि के अनुसार **स्थायी** या अस्थायी होती है;

6. निश्चित या सन्देहास्पद होती हैं;

7. अभिमोचन द्वारा हटाई जा सकती है या नहीं इसके अनुसार **अभिमोचनीय** या **अनभिमोचनीय** होती हैं;

8. उनकी कोटि के अनुसार, **बड़ी** या **छोटी** होती हैं (धर्म नियम 1042),

अड़चनों की संख्या :

1. राज्य की विधि के आधार पर विधिक नातेदारी की गणना की जाती है या नहीं, इसके अनुसार दो या तीन वर्जनात्मक अड़चनें हैं। वे हैं : साधारण व्रत (धर्म नियम 1058) मिश्रित धर्म (धर्म नियम 1060 एसक्यू), दत्तक ग्रहण के जरिए विधिक नातेदारी, यदि सिविल विधि के अनुसार वह विवाह को निषिद्ध करती है (धर्म नियम 1059)

2. बारह या तेरह शून्यकारी अड़चनें हैं : पूरी आयु का न होना (धर्म नियम 1067) नंपुसकता (धर्म नियम 1068) पूर्ववर्ती विवाह बंधन (धर्म नियम 1069), सम्प्रदाय की असमता (धर्म नियम 1070) पवित्र आदेश (धर्म नियम 1072), सत्यनिष्ठ धार्मिक व्रत (धर्म नियम 1073), अपहरण (धर्म नियम 1074), अपराध (धर्म नियम 1075) सगोत्रता (धर्म नियम 1076) विवाह संबंध (धर्म नियम 1077), लोक औचित्य (धर्म नियम 1078), आध्यात्मिक संबंध (धर्म नियम 1079) और दत्तकग्रहण द्वारा विधिक नातेदारी, यदि राज्य की विधि के अनुसार उसके परिणामस्वरूप विवाह अविधिमान्य हो जाता है (धर्म नियम 1080)।

---

1. टी० लिन्कन बाउस्कारेन और एस० जे० एडम सी० एलिए, एस० जे०--कैनन ला--ए टैक्स्ट एण्ड कमैन्टरी, 1949, 426--427 (ब्रूस पब्लिशिंग कंपनी, मिलवाउकी)।

धर्म नियम 1067 :

1. पुरुष सोलह वर्ष की आयु प्राप्त करने से पूर्व और स्त्री अपनी चौदह वर्ष की आयु के पूर्व विधिमान्य विवाह नहीं कर सकती है/सकती हैं।
2. यद्यपि उपर्युक्त आयु के बाद किया गया विवाह विधिमान्य है तथापि पैस्टर्स आफ़ सोल्स (धर्म गुरुओं) को चाहिए कि वे युवाजनों को उस आयु से पूर्व विवाह करने से रोकें जिस आयु में, देश की मान्य रूढ़ि के अनुसार, प्रायः विवाह किया जाता है[1]।

धर्म नियम 1068 :

1. पुरुष या स्त्री की पूर्ववर्ती या शाश्वत नपुंसकता, चाहे अन्य पक्षकार को मालूम हो या नहीं, चाहे आत्यंतिक हो या सापेक्ष, स्वयं प्रकृति के नियम के अनुसार विवाह को अविधिमान्य बना देती है।
2. यदि नपुंसकता की अड़चन या तो विधि की दृष्टि से या तथ्य की दृष्टि से सन्देहास्पद है तो विवाह में कोई बाधा नहीं होती है।
3. बन्ध्यता के कारण, विवाह न तो अविधिमान्य होता है और न अवैध।

धर्म नियम 1069 :

1. जो व्यक्ति किसी पूर्व विवाह बंधन से आबद्ध है, चाहे विवाहोत्तर संभोग न भी हुआ हो, वह यदि विवाह करता है तो वह अविधिमान्य होगा किन्तु उससे विश्वास के विशेषाधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।
2. चाहे पूर्वगामी विवाह अविधिमान्य हो या किसी कारण से उसका विघटन हो गया हो, दूसरे विवाह करने की तब तक अनुज्ञा नहीं है जब तक कि पूर्वगामी विवाह की अकृतता या उसका विघटन विधि के अनुसार और निश्चित रूप से स्थापित न हो गया हो।

धर्म नियम 1070 :

1. यदि ऐसे व्यक्ति द्वारा जिसको बपतिस्मा नहीं दिया गया है, कैथौलिक चर्च में बपतिस्मा दिए गए व्यक्ति से या ऐसे व्यक्ति से जिसने विधर्म या विच्छिन्न सम्प्रदाय से उसमें संपरिवर्तन किया है, तो ऐसा विवाह शून्य है।
2. यदि विवाह के समय किसी पक्षकार की बाबत सामान्य रूप से यह समझा जाता था कि उसे बपतिस्मा दिया गया है अथवा यदि उस पुरुष या स्त्री का बपतिस्मा सन्देहास्पद था तो धर्म नियम 1014 के अनुसार उस विवाह को तब तक विधिमान्य माना जाना चाहिए जब तक कि निश्चित रूप से यह स्थापित नहीं हो जाता है कि पक्षकारों में एक तो बपतिस्मा दिया गया व्यक्ति है और दूसरा ऐसा नहीं है।

धर्म नियम 1071 :

मिश्रित विवाह के संबंध में जो आदेश धर्म नियम 1060 से 1064 तक में अधिकथित हैं, वे ऐसे विवाह को भी लागू हैं जिसके विरुद्ध सम्प्रदाय की असमता वाली अड़चन विद्यमान है।

धर्म नियम 1072 :

धर्म संघों के पादरी द्वारा किया गया विवाह अविधिमान्य है।

धर्म नियम 1073 :

इसी प्रकार, ऐसे धार्मिक व्यक्तियों द्वारा किया गया विवाह अविधिमान्य है जिन्होंने सत्यनिष्ठ व्रत या ऐसे व्रत उच्चारित किए हैं जिनमें परमेश्वर के विशेष उपबन्ध द्वारा विवाह को अविधिमान्य करने की शक्ति निहित है।

धर्म नियम 1074 :

1. अपहरणकर्ता और विवाह के उद्देश्य से अपहृत स्त्री के बीच तब तक कोई विवाह नहीं हो सकता है जब तक वह स्त्री उसके क़ब्जे में रहती है।
2. यदि स्त्री, अपने अपहरणकर्ता से अलग कर दिए जाने पर और सुरक्षित एवं मुक्त स्थान में रखे जाने के बाद उस व्यक्ति को अपने पति के रूप में स्वीकार करने की सहमति प्रकट करती है तो अड़चन समाप्त हो जाती है।

---

1. धर्म नियम 1034 में पैस्टर (धर्म गुरु) से अपेक्षा की गई है कि वह अवयस्कों को माता-पिता की जानकारी या उनकी उचित इच्छाओं के बिना विवाह करने से रोके।

3. जहां तक विवाह की अकृतता का प्रश्न है, किसी स्त्री का हिंसात्मक निरोध, अपहरण के तुल्य माना जाता है अर्थात् जब कोई व्यक्ति विवाह करने की दृष्टि से, किसी स्त्री को हिंसात्मक रूप से, उस स्थान में निरुद्ध रखता है जहां वह रहती है या जहां वह अपनी इच्छा से आई है, तब उसे उस स्त्री का अपहरण माना जाता है।

धर्म नियम 1075 :

निम्नलिखित व्यक्ति विधिमान्य रूप से विवाह नहीं कर सकते हैं :

1. ऐसे व्यक्ति जिन्होंने विधिपूर्ण विवाह के अस्तित्वावधि के दौरान एक साथ जारकर्म किया है और एक दूसरे से विवाह करने का परस्पर वचन दिया है या किसी सिविल कार्य मात्र द्वारा विवाह करने का प्रयास किया है
2. ऐसे व्यक्ति जिन्होंने इसी प्रकार उसी विधिपूर्ण विवाह का अस्तित्वाधि के दौरान एक साथ जारकर्म किया है और उनमें से एक ने विधिपूर्ण पति या पत्नी की हत्या कर दी है।
3. ऐसे व्यक्ति जिन्होंने जारकर्म किए बिना, शारीरिक या नैतिक, पारस्परिक सहयोग द्वार विधिपूर्ण पति या पत्नी की हत्या कर दी है।

धर्म नियम 1076 :

1. सभी पूर्वजों और धर्मज या प्राकृतिक वंशजों के बीच, सगोत्रता की सीधी परम्परा में किया गया विवाह अविधिमान्य है।
2. साम्पर्श्विक परम्परा में, विवाह तीसरी डिग्री तक, जिसमें वह डिग्री भी सम्मिलित है, अविधिमान्य है किन्तु यह समझ लेना चाहिए कि वैवाहिक अड़चन उस समय बढ़ जाती है जब सामान्य पूर्वजों की संख्या बढ़ती है।
3. यदि इस बारे में कोई सन्देह हो या हो सकता है कि पक्षकार सीधी परम्परा में किसी डिग्री में अथवा सांपार्श्विक परम्परा की पहली डिग्री के सगोत्रता द्वारा संबंधित हों, तो विवाह कभी भी अनुज्ञात नहीं किया जाना चाहिए।

धर्म नियम 1077 :

1. सीधी परम्परा में किसी डिग्री में विवाह संबंध से विवाह अविधिमान्य हो जाता है। सांपार्श्विक परम्परा में, इससे दूसरी डिग्री तक, जिसमें वह डिग्री भी सम्मिलित है, विवाह अविधिमान्य हो जाता है।
2. विवाह संबंधी की अड़चन बढ़ जाती है—
   (1) जब-जब संगोत्रता की अड़चन, जिससे वह उत्पन्न हुई है, बढ़ जाती है,
   (2) जब विवाह मृत पति/पत्नी के रक्त नातेदार के साथ एक के पश्चात् दूसरी बार किया जाता है।

धर्म नियम 1078 :

लोक औचित्य की अड़चन अविधिमान्य विवाह से, चाहे विवाहोत्तर संभोग हुआ हो या नहीं यथा सार्वजनिक और कुख्यात उपपत्नीत्व से उत्पन्न होती है और उसके कारण पुरुष, और स्त्री के रक्त नातेदारों के बीच, और इसके विपरीत, सीधी परम्परा की पहली और दूसरी डिग्री में विवाह अविधिमान्य हो जाता है।

धर्म नियम 1079 :

एक मात्र वह आध्यात्मिक संबंध जो विवाह को अविधिमान्य बना देता है, धर्म नियम 768 में वर्णित है।

धर्म नियम 1080 :

जो व्यक्ति सिविल विधि के अनुसार, दत्तक ग्रहण से उत्पन्न विधिक नातेदारी के कारण परस्पर विवाह करने के लिए असमर्थ माने जाते हैं, वे धर्म विधि के अनुसार आपस में विधिमान्यपूर्ण रूप से विवाह नहीं कर सकते हैं।